

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 14: गृहस्थ-जीवन

14 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



हर कोई वन को नहीं जा सकता। अतः युधिष्ठिर वह प्रश्न पूछते हैं जो हममें से अधिकांश का है: एक गृहस्थ, घर तथा परिवार से बँधा, फिर भी भगवान् तक कैसे पहुँच सकता है? नारद का उत्तर सामान्य गृहस्थ-जीवन को भक्ति, करुणा, तथा शान्त समर्पण के एक मार्ग में बदल देता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। संन्यासी तथा वानप्रस्थ का वर्णन करने के पश्चात्, नारद अब, सप्तम स्कन्ध के इस चतुर्दश अध्याय में, उस प्रश्न का उत्तर देते हैं जो सम्राट युधिष्ठिर हम सबकी ओर से पूछते हैं: जिसका मन घर तथा परिवार से बँधा है, वह फिर भी भगवान् की ओर मार्ग कैसे चल सकता है?

अध्याय-पारेचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 14
- अध्याय-शीर्षक: आदर्श गृहस्थ-जीवन, भगवान् की ओर गृहस्थ का मार्ग
- मुख्य वक्ता: सिद्ध नारद
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर
- मुख्य स्थान: सम्राट युधिष्ठिर की सभा, नारद के प्रवचन के क्रम में
- मुख्य विषय-वस्तु: एक गृहस्थ मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है — भक्ति, वैराग्य, समस्त प्राणियों पर करुणा, उदार वितरण, तथा सबके भीतर विद्यमान भगवान् की पूजा द्वारा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 14, श्लोक 1-42
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

गृहस्थ का प्रश्न

युधिष्ठिर ने निःशस्त्र कर देने वाली ईमानदारी से प्रश्न रखा, स्वयं को उनमें गिनते हुए जिनके मन घर से बँधे हैं। उन्होंने दिव्य ऋषि से पूछा, एक गृहस्थ, उन्हीं जैसा, सर्वोच्च अवस्था सरलता से कैसे प्राप्त कर सकता है?

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा ।

यायादेवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥ १ ॥

gṛhastha etāṁ padavīm vidhinā yena cāñjasā yāyād deva-ṛṣe brūhi mādṛśo gṛha-mūḍha-dhīḥ

अर्थ: हे दिव्य ऋषि, वह विधि बताइए जिससे मुझ जैसा गृहस्थ, जिसका मन घर के प्रति आसक्ति से मोहित है, सरलता से उस सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर सके। (SB 7.14.1)

घर एक अर्पण के रूप में

नारद का उत्तर विषय के मर्म से ही आरम्भ हुआ: कि गृहस्थ को अपने घर में रहना चाहिए और उसके समस्त उचित कर्तव्य करने चाहिए — किन्तु उन्हें भगवान् वासुदेव को प्रत्यक्ष अर्पण के रूप में करना चाहिए, किसी पुरस्कार की अपेक्षा किए बिना, जबकि निष्ठा से महान सन्तों तथा भक्तों की सेवा करते हुए:

गृहष्ववस्थितो राजन्क्रियाः कुर्वन्थोचिताः ।
वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥ २ ॥

gṛheṣv avasthito rājan kriyāḥ kurvan yathocitāḥ vāsudevārpaṇaṁ sākṣād upāsīta mahā-munīn

अर्थ: हे राजन्, अपने घर में रहते हुए और अपने उचित कर्तव्यों को भगवान् वासुदेव को प्रत्यक्ष अर्पण के रूप में करते हुए, गृहस्थ को महान सन्तों की सेवा करनी चाहिए। (SB 7.14.2)

शान्त पुरुषों का संग रखकर और श्रद्धापूर्वक बार-बार भगवान् तथा उनके अवतारों की अमृतमयी कथाएँ सुनकर, नारद ने सिखाया, गृहस्थ के भीतर परिवार के प्रति मोह धीरे-धीरे शिथिल पड़ने लगता है — किसी दबाव से नहीं, अपितु ठीक वैसे ही जैसे स्वप्न से उठा व्यक्ति सहज ही उसमें देखी हर वस्तु त्याग देता है:

शृण्वन्भगवतोऽभीक्षणमवतारकथामृतम् ।
श्रद्धधानो यथाकालमुपशान्तजनावृतः ॥ ३ ॥
सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्गमात्मजायात्मजादिषु ।
विमुञ्चेन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥ ४ ॥

*śṛṇvan bhagavato 'bhīkṣaṇam avatāra-kathāmṛtam śraddadhāno yathā-kālam upaśānta-janāvṛtaḥ
sat-saṅgāc chanakaiḥ saṅgam ātma-jāyātmajādiṣu vimuñcen mucyamāneṣu svayaṁ svapnavad
utthitaḥ*

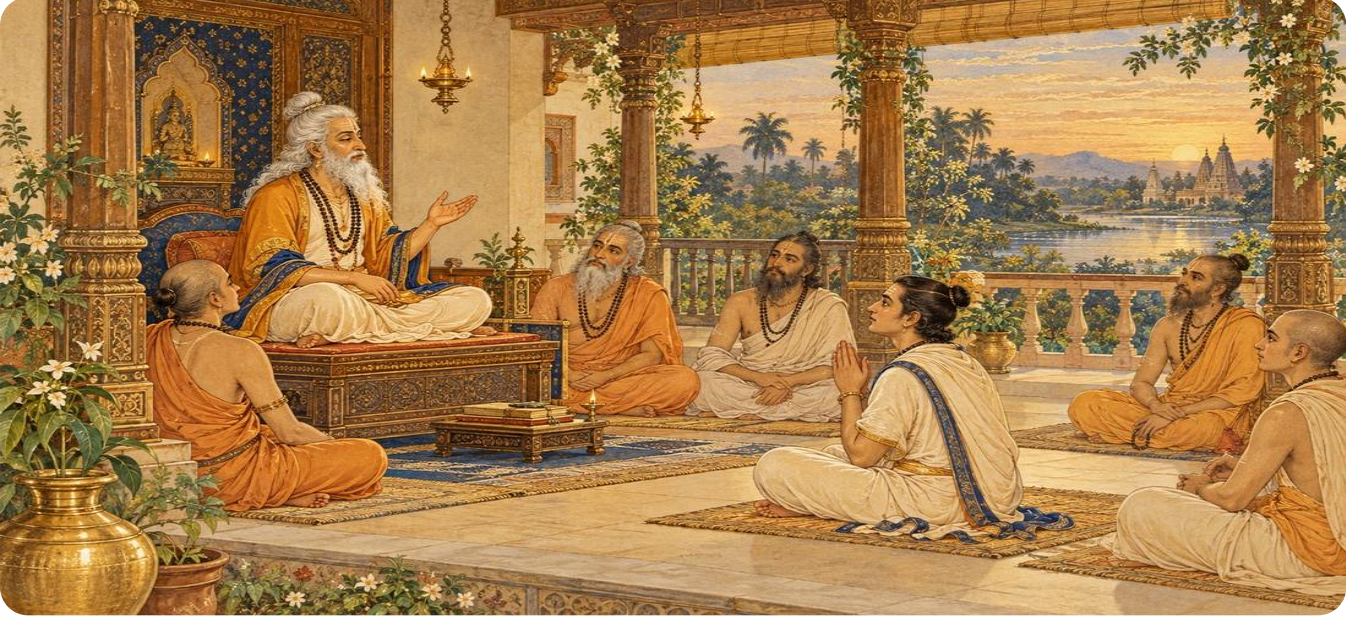
अर्थ: शान्त-चित्त पुरुषों के संग में रहकर भगवान् के अवतारों की अमृत-कथा को बार-बार श्रद्धा से सुनने वाला गृहस्थ इस प्रकार क्रमशः पत्नी तथा सन्तान के प्रति ममत्व त्याग देता है — ठीक जैसे निद्रा से जगा हुआ पुरुष समाप्त हो चुके स्वप्न के हर दृश्य को छोड़ देता है। (SB 7.14.3–4)

उसे अपने शरीर तथा घर की सेवा केवल उतनी करनी चाहिए जितनी आवश्यक हो, बाहर से अन्य लोगों-सा प्रतीत होते हुए किन्तु भीतर से मुक्त रहते हुए, कुछ भी अपना न मानते हुए, और जो भी धन भगवान् की कृपा से आए उसे भोगते हुए। नारद ने फिर इस उपहार की सीमा अत्यन्त स्पष्टता से खींची:

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ ८ ॥

*yāvad bhriyeta jaṭharaṁ tāvat svatvaṁ hi dehinām adhikaṁ yo 'bhimanyeta sa steno daṇḍam
arhati*

अर्थ: देहधारी का उचित अधिकार केवल उतने पर है जितना शरीर तथा आत्मा को जोड़े रखने के लिए पर्याप्त हो; जो इससे अधिक पर अपना दावा मानता है उसे चोर समझा जाना चाहिए, जो प्रकृति के नियम से दण्ड का पात्र है। (SB 7.14.8)



गृहस्थ अपने कर्तव्यों को भगवान् के अर्पण के रूप में करता है और, सन्तों के संग में, बार-बार हरि की अमृतमयी कथाएँ सुनता है, घर के प्रति अपनी आसक्ति को कोमलता से ढीला करते हुए (SB 7.14.2-4)।

प्रत्येक प्राणी पर करुणा

तब अध्याय की सर्वाधिक कोमल शिक्षाओं में से एक आई। गृहस्थ को अपने चारों ओर के पशुओं को — हरिण तथा ऊँट, गधे तथा वानर, चूहे, सरीसृप, पक्षी, और कीट तक — अपनी ही सन्तान के समान देखना है, क्योंकि अन्ततः, हमारी सन्तान से उन्हें इतना क्या पृथक् करता है?

मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ।

आत्मनः पुत्रवत् पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत् ॥ ९ ॥

mṛgoṣṭra-khara-markākhu- sarīṣṭp khaga-makṣikāḥ ātmanaḥ putravat paśyet tair eṣāṁ antaraṁ kiyat

अर्थ: हरिण, ऊँट, गधे, वानर, चूहे, सरीसृप, पक्षी, तथा कीटों को अपनी सन्तान के समान देखना चाहिए — क्योंकि उन्हें अपनी सन्तान से कितना कम पृथक् करता है! (SB 7.14.9)

उसी उदार भाव में, नारद ने गृहस्थ से आग्रह किया कि वह जीवन के सामान्य ध्येयों के लिए भी व्याकुल होकर प्रयास न करे, अपितु जो भाग्य निश्चित करे उसे स्वीकार करे; अपने भोगों को सबके साथ मुक्त रूप से बाँटे — कुत्तों तथा नीचतम जीवों तक के साथ; और अपनी आसक्तियों को इतना हल्के से थामे कि वह भीतर से अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तु पर भी अपना दावा त्याग दे। शरीर, उन्होंने युधिष्ठिर को स्मरण कराया, अन्ततः कीड़े, राख, या धूल बनना है; इसके विपरीत, कितनी उच्च है वह अक्षर आत्मा।



करुणामय गृहस्थ अपना भोजन समस्त प्राणियों के साथ बाँटता है — पक्षियों तथा विनम्रतम पशुओं तक के साथ — उन्हें अपनी सन्तान के समान देखते हुए (SB 7.14.9-11)।

सबके भीतर भगवान् की पूजा

नारद ने तब गृहस्थ को एक ऐसी दैनिक पूजा दी जो समूची सृष्टि को समेटने योग्य विस्तृत है। अपने ईमानदार परिश्रम से जो कुछ वह अर्जित करे, उसी से उसे प्रतिदिन उस अन्तर्यामी परम पुरुष को, भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट समस्त सृष्टि के माध्यम से, पूजना चाहिए:

देवानृषीन् नृभूतानि पितृनात्मानमन्वहम् ।
स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥ १५ ॥

devān ṛṣīn nṛ-bhūtāni pitṛṇ ātmānam anvaham sva-vṛttyāgata-vittena yajeta puruṣam pṛthak

अर्थ: प्रतिदिन, अपने ईमानदार श्रम से अर्जित धन से, गृहस्थ को परम पुरुष की पूजा करनी चाहिए जो देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों, अन्य जीवों, पितरों, तथा अपने स्व में पृथक्-पृथक् विद्यमान हैं। (SB 7.14.15)

और यद्यपि यज्ञाग्नि के माध्यम से किया यज्ञ पावन है, नारद ने कुछ ऐसा प्रकट किया जो पूजा को कर्मकाण्ड से उठाकर प्रेम में ले जाता है: कि भगवान् एक भूखे ब्राह्मण के मुख में श्रद्धा से रखे भोजन से उतना ही अधिक प्रसन्न होते हैं जितना अग्नि में डाली आहुतियों से नहीं:

न ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक् ।
इज्येत हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतैः ॥ १७ ॥

na hy agni-mukhato 'yaṁ vai bhagavān sarva-yajña-bhuk ijyeta haviṣā rājan yathā vipra-mukhe hutaiḥ

अर्थ: समस्त यज्ञों के भोक्ता भगवान् यज्ञाग्नि के मुख से डाली आहुतियों से उतने पूर्णतः पूजित नहीं होते, हे राजन्, जितने एक ब्राह्मण के मुख में रखे अर्पण से होते हैं। (SB 7.14.17)



गृहस्थ समस्त प्राणियों में विद्यमान भगवान् की पूजा करता है, ब्राह्मण तथा अतिथियों को श्रद्धा से भोजन अर्पित करते हुए — एक ऐसी पूजा जिसे भगवान् अग्नि की आहुतियों से भी अधिक प्रेम करते हैं (SB 7.14.15-18)।

पावन काल तथा भक्तों की महिमा

नारद ने आगे पूजा, दान, तथा पितरों के स्मरण के पावन अवसरों का वर्णन किया — विषुव तथा अयन, ग्रहण, पवित्र तिथियाँ, तथा अपने जन्म-नक्षत्र — यह सिखाते हुए कि इन कालों में किए गए पुण्य-कर्म अक्षय हो जाते हैं, चिरस्थायी कल्याण लाते हुए (SB 7.14.19–26)। उन्होंने ऐसे आचरण के लिए सबसे पावन स्थलों के भी नाम गिनाए: जहाँ भी कोई वैष्णव मिले, जहाँ भी भगवान् की प्रतिमा पूजी जाती हो, तथा कुरुक्षेत्र, प्रयाग, वाराणसी, मथुरा जैसे महान तीर्थ — यह घोषित करते हुए कि वहाँ किया गया एक भी भक्ति-कर्म सहस्रगुणा फल देता है (SB 7.14.27–33)। अन्ततः उन्होंने गृहस्थ की श्रद्धा के सच्चे पात्रों की महिमा की। समस्त मनुष्यों में, पूजा का सर्वश्रेष्ठ पात्र ब्राह्मण है, जो तप, विद्या, तथा सन्तोष से वेद को, भगवान् के ही रूप को, धारण करता है। ऐसे ब्राह्मणों की महिमा नारद ने इस श्लोक में उद्धाटित की:

नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः ।

पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥ ४२ ॥

nanv asya brāhmaṇā rājan kṛṣṇasya jagad-ātmanah punantaḥ pāda-rajāsā tri-lokīm daivataṁ mahat

अर्थ: निश्चय ही, हे राजन्, कृष्ण, जगत् की आत्मा, के प्रति समर्पित ब्राह्मण अपने चरणों की धूल से तीनों लोकों को पवित्र करते हैं; वे ही महान देवता हैं। (SB 7.14.42)



नारद गृहस्थ को सिखाते हैं कि पावन कालों को पूजा तथा दान से सम्मानित करे, और भगवान् के भक्तों की श्रद्धा करे, जिनके चरण लोकों को पवित्र करते हैं (SB 7.14.19-42)।

कृष्ण, समस्त के मूल

नारद ने तब एक गहरे प्रश्न का उत्तर दिया: गृहस्थ जिन योग्य पात्रों का सम्मान करता है, उन सबमें अन्ततः सर्वोच्च पात्र कौन है? विद्वान् मनीषियों ने, उन्होंने कहा, इसे सदा के लिए निश्चित कर दिया है — वह हरि हैं, केवल हरि, क्योंकि यह सम्पूर्ण चर-अचर सृष्टि उन्हीं में स्थित है:

पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ।
हरिरिवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥ ३४ ॥

pātram tv atra niruktaṁ vai kavibhiḥ pātra-vittamaiḥ harir evaika urvīśa yan-mayaṁ vai carācaram

अर्थ: सच्ची योग्यता को सबसे भली-भाँति जानने वाले मनीषियों ने इसे निश्चित कर दिया है: हे राजन्, हरि ही वह एकमात्र सर्वोच्च पात्र हैं, क्योंकि यह चर-अचर सम्पूर्ण जगत् उन्हीं में समाया हुआ है। (SB 7.14.34)

नारद ने इसका कारण भी बताया: असंख्य जीवों से भरी यह सृष्टि मानो एक विशाल वृक्ष है, और अच्युत भगवान् उसकी एकमात्र जड़ हैं। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को सींचने से उसकी हर शाखा, पत्ती, तथा पुष्प तृप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार केवल कृष्ण की पूजा से ही उनकी सृष्टि का प्रत्येक जीव तृप्त तथा पोषित हो जाता है:

जीवराशिभिराकीर्ण अण्डकोशाङ्घ्रिपो महान् ।
तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥ ३६ ॥

jīva-rāśibhir ākīrṇa aṇḍa-kośāṅghripo mahān tan-mūlatvād acyutejyā sarva-jīvātma-tarpaṇam

अर्थ: असंख्य जीवों से भरा यह विशाल विश्व मानो एक महान वृक्ष है जिसकी जड़ स्वयं अच्युत भगवान् हैं; चूँकि वे ही वह जड़ हैं, केवल उन्हें अर्पित पूजा ही समस्त जीवों की आत्मा को तृप्त कर देती है। (SB 7.14.36)

नारद ने फिर युधिष्ठिर को स्वयं देखा हुआ एक प्रमाण दिया। सम्राट के अपने राजसूय यज्ञ में, जब ऋषियों, देवताओं, तथा स्वयं ब्रह्माजी के चार पुत्रों तक ने मिलकर यह निश्चित करना चाहा कि उस विशाल सभा में प्रथम पूजा किसकी होनी चाहिए, तो सबने एक स्वर से कृष्ण को ही चुना; केवल शिशुपाल ने विरोध किया, और उसी हठ के कारण भगवान् ने स्वयं अपने हाथों उसका वध किया (SB 7.14.35)। यही कारण है, नारद ने कहा, कि अतिथि को भोजन देना, द्वार पर आए पशु पर दया करना, तथा पितरों का स्मरण करना — ये सब भगवान् के प्रेम के प्रतिस्पर्धी नहीं, अपितु उसी एक जड़ को किया गया अर्पण हैं जो पहले से ही सबको पोषित करती है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. घर एक मन्दिर हो सकता है। गृहस्थ को संसार से भागने की आवश्यकता नहीं; हर कर्तव्य को भगवान् वासुदेव के अर्पण के रूप में करना गृहस्थ-जीवन को ही पूजा बना देता है (SB 7.14.2)।
2. आसक्ति के भीतर भी वैराग्य जिया जा सकता है। सन्तों के संग में भगवान् की कथाएँ सुनकर, व्यक्ति “मेरे” की पकड़ ढीली करता है, फिर भी अपने परिवार की निष्ठा से देखभाल करता है (SB 7.14.3-4)।
3. केवल अपना भाग लें। जो पेट भर सके उतने पर जीना उचित है; आवश्यकता से अधिक पकड़ना एक प्रकार की चोरी है (SB 7.14.8)।
4. करुणा प्रत्येक प्राणी तक फैलती है। पशु तथा कीट तक को अपनी सन्तान के समान संजोना है, क्योंकि उन्हें हमसे कितना कम पृथक् करता है (SB 7.14.9)।
5. सबके भीतर विद्यमान भगवान् की पूजा करें। परम की पूजा देवताओं, ऋषियों, अतिथियों, तथा जीवों के माध्यम से होती है — और वे भूखे को खिलाने से अग्नि की अपेक्षा अधिक प्रसन्न होते हैं (SB 7.14.15, 17)।
6. कृष्ण ही वह मूल हैं जो सबको धारण करते हैं। यह सम्पूर्ण सृष्टि उन्हीं में इस प्रकार स्थित है जैसे शाखाएँ एक ही जड़ पर टिकी हों; अतः कृष्ण को अर्पित पूजा पहले से ही प्रत्येक जीव को पोषित कर देती है (SB 7.14.34, 36)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय को इतना सान्त्वनादायक इसकी वह अस्वीकृति बनाती है कि पवित्रता केवल थोड़े-से लोगों के लिए सुरक्षित हो। युधिष्ठिर हम सब उनकी ओर से बोलते हैं जो अपने उत्तरदायित्वों से बँधे अनुभव करते हैं — घर, परिवार, कर्म का दैनिक चक्र — और चिन्तित होते हैं कि ऐसा जीवन किसी रूप में न्यून है, भगवान् की ओर एक बाधा। नारद कोमलता से उस भय को उलट देते हैं। वे गृहस्थ से कर्तव्य त्यागने को नहीं कहते अपितु उन्हें रूपान्तरित करने को: पकाना, कमाना, देखभाल करना, और देना, सब उस भगवान् के अर्पण के रूप में जो हर अतिथि तथा हर प्राणी में निवास करते हैं जो द्वार पर आता है। इस दृष्टि में, परिवार का प्रेम भगवान् के प्रेम के विरुद्ध नहीं अपितु उसकी प्रशिक्षण-भूमि बन जाता है, बशर्ते हृदय समस्त वस्तुओं को हल्के से थामे और सबमें एक ही भगवान् को देखे। द्वार पर खिलाए गए पशु, भोजन से सम्मानित अतिथि, पावन दिन पर स्मरण किए गए पितर — प्रत्येक पूजा का एक कर्म बन जाता है। भगवान् को पाने के लिए हमें कहीं और नहीं जाना। वे पहले से ही हमारे सम्मुख रखे लोगों तथा प्राणियों में विद्यमान हैं, सेवा किए जाने की प्रतीक्षा में।

एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज, अपने घर को पूजा का स्थान बनाएँ। एक सामान्य कर्तव्य चुनें — भोजन बनाना, अपनी जीविका कमाना, अपने घर में किसी की देखभाल करना — और आरम्भ करने से पूर्व उसे मौन रूप से भगवान् को अर्पित करें, कुछ भी बदले में अपेक्षा किए बिना, भीतर कहते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” फिर, इस अध्याय के भाव में, किसी को खिलाएँ: किसी पक्षी या पशु के लिए भोजन रखें, या किसी अतिथि या ज़रूरतमन्द के साथ भोजन बाँटें, उनमें विद्यमान भगवान् को देखते हुए। करुणा तथा अर्पण, न कि संग्रह, आपके दिन की लय हो।

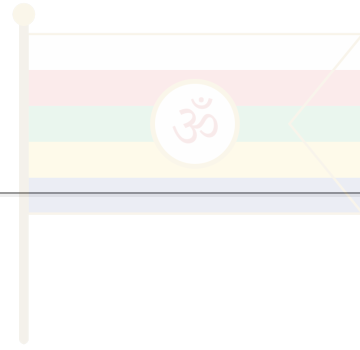
उपसंहार

सप्तम स्कन्ध का चतुर्दश अध्याय युधिष्ठिर के इस भय का — कि वे गृह-मूढ हैं — उत्तर एक ही, मुक्तिदायक चित्र से देता है: यह सृष्टि एक वृक्ष है, और केवल कृष्ण ही उसकी जड़ हैं। गृहस्थ को भगवान् तक पहुँचने के लिए घर या परिवार त्यागने की आवश्यकता नहीं — उसे केवल यह देखना है कि उस एक जड़ को अर्पित हर कर्तव्य, खिलाया गया हर अतिथि, आश्रय पाया हर प्राणी, पहले से ही समस्त जीवों के वृक्ष तक पहुँचकर उसे पोषित कर रहा है। घर तभी बाधा बनना छोड़ देता है जब उसके द्वार उसी जड़ की ओर खुलें, न कि उसके चारों ओर बन्द हों। हम भी प्रतिदिन उस जड़ को सींचना सीखें, यहाँ तक कि हमारा सम्पूर्ण जीवन ही एक अखण्ड अर्पण बनकर खिल उठे।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, चतुर्दश प्रवचन, पृष्ठ 719–723।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-14-ideal-family-life-householders-path-to-god-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

